IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 24, Issue 7, Ser. 1 (July. 2019) 85-86
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

साहित्य में मन के भावों के विलक्षण अभिप्रेषण – आलोचना की विश्वदृष्टि

डॉ0 महेश चन्द्र चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
नारायण कॉलेज,शिकोहाबाद

सारांश
आलोचना मानव–जीवन में बहुविध रूपों में प्रवेश पाता है। कहीं यह आघातक है, कहीं यह चिकोटी काटता है और कहीं हास्य के साथ मिलकर जीवन के तनाव को दूर करता है। एक टालोचना साहित्यकार के लिए एक पैनी दृष्टि आवश्यक होती है, जिससे वह जीवन से टालोचना के आलोचनकों के आधार तत्व को खोज सके। आलोचना के माध्यम से समाज का पर्यवेक्षण करके साहित्यकार साहित्य के माध्यम से शोधन करता है, समाज के स्वरूप को निखारता है तथा उसे शुद्ध करता है। शोधन एवं सुधार के मूल भाव को अपने में समेटते हुए वह टालोचना के माध्यम से व्यक्त करवाकर मानव की कथित मूर्खताओं का सुधार करना चाहता है। आलोचना के माध्यम से समस्त मानव जगत् में मूर्खताओं का सुधार हुआ है, मानवीय दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त की गयी है तथा भूलों, न्यूनताओं एवं अनाचारों के विषैले कलेवर को समाज केऊपर से उतारकर अलग फेंक दिया गया है।

परिचय

हास्य और आलोचना जीवन के सहज पक्ष हैं। साहित्य जीवन की सजीवता और क्रियाकलापों का वास्तविक चित्रण करता है। अतः साहित्य के अन्तर्गत हास्य और आलोचना का समावेश उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि जीवन की अन्य अनुभूतियों का। अन्य अनुभूतियों की अपेक्षा हास्य और आलोचना का प्रभाव कुछ विशेष प्रकार से पड़ता है, क्योंकि यह जीवन की विद्रूपताओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है।

आज के आलोचना लेखकों ने अपने परिवेश को सम्पूर्ण स्थितियों और जीवन संदर्भों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। आलोचना का आधार ग्रहण कर उन्होंने इन सम्पूर्ण समस्याओं के समाधान का प्रयत्न भी किया है। आजादी के पश्चात् जनजीवन में एक परिवर्तन और बदलाव की स्थिति देखी गयी, इसका प्रभाव साहित्यकारों और लेखकों पर भी पड़ा। उन्होंने देखा किआज का जीवन ही एक आलोचना के रूप में अवस्थित है। आलोचना से उसका सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। फलतः उसने आलोचना को लेखन के संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। उन्होंने आलोचना को एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित किया, जो युग को बहुत बड़ी माँग थी। इसके पूर्व आलोचना को सदैव हास्य के साथ जोड़कर देखा जाता रहाहै। आलोचना के प्रहार के कारण आदमी तिलमिला कररह जाता है, साथ ही उसका प्रभाव भी अमिट है। इन्हीं कारणों से आलोचना को हथियार के रूप में लेखकों ने प्रयोग किया।

समष्टि रूप में हास्य जितना लोकप्रिय है, उतना ही आलोचना आज लोकप्रिय है। आलोचना में लेखक मन की मौज के अनुसार रचना कर्म में संलग्न होता है। आलोचना में खिलखिलाहट सुनाई देती रही, विशेषतः उन भारतीय भाषाओं में जिनमें अब तक ालोचना विधा प्रस्थापित नहीं की गयी है या वह होते हुए भी उसे विधा रूप में मान्यता नहीं है। इन भाषाओं के हास्य में आलोचना–वक्रता विद्यमान रही, अतएव पाठकों को हास्य के साथ–साथ साहित्य का आलोचनाकर्म लोकप्रिय है। नये आलोचनाकार अनुभव और अभिव्यक्ति के बल पर लिखते हैं और अपनी कलम को नश्तर की तरह इस्तेमाल कर नये–नये विषयों को ढूंढकर नयापन लाते हैं। अतः आलोचना लोकप्रियदर्शी है।

पहले–पहले आलोचना केवल सीमित लिखा जाता था, उसका दायरा भी छोटा था। आज विभिन्न पत्रिकाओं के अलावा कई पुस्तकों की सर्जना हो रही है। आसमान को छूने वाली मँहगाई में तथा कागज के सन्दर्भ में सरकार के बदलते निर्णय के बावजूद भी ढेर सारी आलोचना पुस्तकें हर वर्ष निकलती हैं। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के माध्यम से भी आलोचना परोसा जा रहा है, ये सब आलोचना की लोकप्रियता के कारण ही संभव है।

भारतेन्दु काल, स्वातंत्र्यपूर्व काल तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल यानी लगभग 1850 से लेकर 1996 तक व्यवस्था के परखच्चे उड़ाने तथा उखाड़ने का काम आलोचना ने किया है। हमारी अनेक कुंठाओं का उद्घाटन आलोचना ने किया है, फलस्वरूप वह जनमानस में पैठ बना सका, लोकप्रिय हो सका। आलोचना क्रांतदर्शी और शाश्वत मूल्यों की वह कसौटी है, दृष्टि है जो सैकड़ों वर्षों के शोषण–दर्शन और कुसंस्कारों में बंधे मनुष्य को मुक्त करता है। अन्यथा आज भी वह केवल वोटर ओर उसकी जमातवर्ग बोट–बैंक के रूप में तौले जा रहे हैं।

हमारे देश के सम्मुख, राजनेताओं के सामने अनेकानेक समस्याएँ हैं, जैसे श्रीरामजन्मभूमि–विवाद, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोश से कर्जा, भारत–पाक– बांग्ला–चायना संबंध, अखबारी कागज की कीमतों में श्रीबृद्धि, वासना कांड, शेयर्स कांड, राज्यों की समस्याओं में बढ़ोत्तरी, उपचुनाव आदि कई मुसीबतें आमंत्रित हैं और आम आदमी की समस्याएँ भी आम हैं– उसे पेयजल चाहिए, काम चाहिए, रोटी चाहिए एवं एक कुटिया का भी प्रबन्ध हो। आलोचनाकार अपने आलोचना से इन ऊँचे, मध्यम एवं छोटे लोगों की समस्याओं को पहचान कर उचित प्रबन्ध के लिए प्रयत्नशील हैं। इन सबकी विपदाओं को राहत दिलाने का काम आलोचना करता है।

यह एक अहम मुद्दा है कि आलोचना की स्थापना तथा जनाधार उसकी अपनी पैनी धार के कारण विचारोत्तेजक नुकीलेपन से संभव हुआ है। यह सच है कि सभी आलोचनाकार एक स्तर का, विचार का लेखन नहीं करते हैं, कहीं वे चालू आलोचना परोसते हैं, तो कहीं हल्की चिकोटियाँ भर लेते हैं, वे नश्तर बहुत कम अवसरों पर चलाते रहे हैं। मतलब यह कि परिवेश के अनुकूल वे अपना कार्यभार फैलाते या कम कर लेते हैं। जैसा है, उसके साथ वैसे मिलकर वे आगे बढ़ते हैं, यानी यहाँ आलोचना पानी के समान है, वही तथ्य आलोचना का है। वह न सदा कठोर होता है, न रहम भरा, इसलिए लोगों में आलोचना की पहचान तथा प्रियदर्शी रूप है।

आलोचना की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि इसमें देश–विदेश का असंगतिपूर्ण वृत्त होता है। दुनियादारी की खबरें समझती हैं, देश–विदेश की सभ्यता, संस्कृति, आचार–विचार, व्यवहार का पर्दाफाश होता है, जिससे पाठक के मन में ज्ञान की श्रीवृद्धि होती है। साथ ही हम किस पथ पर हैं, व किस ओर जाते हैं, इस प्रकार की तुलना करके वह सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करता है। इसलिए साहित्य की अन्य विधाओं से आलोचना अधिकतम भाता है।

सामाजिक चेतना की सर्वाधिक सक्षम तथा प्रभावशाली आक्रामक अभिव्यक्ति टालोचना है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक, प्रशासनिक विद्रूपों को आलोचना लेखक देखता है और दिखाता है, जो सारे दैनिक समस्याओं से जुड़े हैं। आलोचना में जो आक्रामकता होती है, वह निजी भड़ास या खुन्नस की अभिव्यक्ति नहीं होती है। हम कहीं भी अन्याय तथा उत्पीड़न देखते हैं, तो हमारे दिल में फौरन सहानुभूति उमड़कर आती है, जिससे अन्यायकर्ता के प्रति गहरा आक्रोश भी विकसित होता है। सीधी और खरी अभिव्यक्ति में आलोचना का प्रभाव अधिक अचूक होता है। इससे पाठक आकर्षित होते हैं। अतः आलोचना दिन–ब–दिन अधिक जनप्रिय हो रहा है। साहित्य में आलोचना की लोकप्रियता बरकरार है, क्योंकि आलोचना का उपजीव्य समाज के सभी क्षेत्रों में विद्यमान असंगति, दोगलापन, दुराचार, बेईमानी, अत्याचार आदि हैं। समाज में जब तक ये सारे तत्व दिखाई देंगे, तब तक आलोचना फूलेगा, फलेगा, बढ़ेगा, इस स्थिति तक आलोचना का भविष्य उज्ज्वल है। विश्व टालोचना साहित्य तब तक दिन–दूना रात–चौगुना फूलेगा, बहेगा, बढ़ेगा, चढ़ेगा जब तक सतयुग का अवतार न हो।

सन्दर्भ सूची

1. गर्ग, शेरजंग : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में आलोचना, पृ0 75
2. वर्मा, भगवतीचरण : साहित्य की मान्यताएँ, पृ0 114
3. नागरी पत्रिका;बेढव स्मृति अंकद्ध, पृ0 56
4. श्रीवास्तव, जी0पी0 : हास्य रस, पृ0 18
5. कन्हैया लाल नन्दन : श्रेष्ठ आलोचना कथाएँ, पृ0 07
6. अमृत रायः नई कहानियाँ, नव0 1969, पृ0 06
7. गोपाल प्रसाद व्यास : साप्ताहिक हिन्दुस्तान –24 मार्च, 1968, पृ0 8
8. डॉ0 मलय : आलोचना का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0 155
9. घोष, श्यामसुन्दर : आलोचना क्या, आलोचना क्यों, पृ0 55
10. हरिशंकर परसाई : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ;2 अप्रैल 1967, पृ0 8